मिलते हैं और प्रकृति के अनुरूप ही कर्म में उनकी प्रवृत्ति होती है। इसी से भाँति-भाँति का सुख-दुःख भोगना पड़ता है।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।।६।।

तत्र=उन तीनों गुणों में; **सत्त्वम्**=सत्त्वगुण; **निर्मलत्वात्**=प्राकृत-जगत में सबसे निर्मल होने के कारण; **प्रकाशकम्**=ज्ञान का प्रकाशक; **अनामयम्**=निर्विकार; उपद्रवरहित; **सुखसंगेन**=सुख के संग से; **बध्नाति**=बाँधता है; **ज्ञानसंगेन**=ज्ञान के अभिमान से; **च**=तथा; **अनघ**=हे निष्पाप अर्जुन।

अनुवाद

हे निष्पाप अर्जुन! उन तीनों गुणों में सत्त्वगुण तो सबसे निर्मल, ज्ञान का प्रकाशक और सम्पूर्ण विकारों से मुक्त है। इसमें स्थित पुरुषों में ज्ञान का विकास होता है; परन्तु वे भी सुख और ज्ञान की उपाधि से बँध जाते हैं।।६।।

तात्पर्य

प्रकृतिस्थ जीव अनेक प्रकार के हैं। कोई सुखी है, तो दूसरा असहाय है; कोई बड़ा कर्मठ है तो कोई निष्क्रिय है। इस प्रकार के लक्षणों के रूप में प्रकट होने वाले गुण ही प्रकृति में जीव की बद्धावस्था के कारण हैं। जीवों को किस गुण से कौन सा बन्धन होता है, यह इस अध्याय में वर्णन है। सर्वप्रथम सत्त्वगुण पर विचार किया जाता है। प्राकृत-जगत् में जिसमें सत्त्वगुण का विकास होता है, वह अन्य बद्धजीवों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् हो जाता है। सत्त्वगुणी मनुष्य लौकिक दुःखों से अधिक प्रभावित नहीं होता; उसमें यह भाव रहता है कि मैं सुखी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ। ब्राह्मण इस कोटि का प्रतीक है। सुख के इस भाव का कारण यह है कि सत्त्वगुण में पाप कर्मफल का प्रायः अभाव रहता है। वास्तव में वैदिक शास्त्रों में उल्लेख भी है कि सत्त्वगुण का अर्थ अधिक सुख और अधिक ज्ञान है।

यहाँ एक कठिनाई है। सत्त्वगुण में जीव को यह अभिमान हो जाता है कि वह ज्ञानी है, औरों से श्रेष्ठ है। इसी उपाधि से वह बँधता है। इसके अच्छे उदाहरण आधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक हैं। उनमें अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान है और जीवनयापन की अधिक सुविधाओं के कारण वे एक प्रकार के प्राकृत सुख का अनुभव करते भी हैं। इससे वे सत्त्वगुण में कार्य करने में आसक्त हो जाते हैं। जब तक यह आसक्ति रहेगी, तब तक उन्हें प्रकृति के गुणों से बना किसी न किसी प्रकार का शरीर धारण करना पड़ेगा। ऐसे में मुक्ति अथवा वैकुण्ठ-जगत् की प्राप्ति नहीं हो सकती। बारंबार दार्शनिक, वैज्ञानिक अथवा कवि बनना पड़ेगा, जिससे जन्म-मृत्यु का दुःखमय चक्र अविराम चलता रहेगा। फिर भी, मायाजनित मोह के वश जीव ऐसे जीवन को सुखदायी समझता है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्।।७।।